इकाई 21 सृष्टिक्रम

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 सृष्टिक्रम– कारिका 22–45

21.3 सरांश

21.4 शब्दावली

21.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

21.6 अभ्यास प्रश्न

21.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :

- सृष्टिक्रम के सांख्यसम्मत दृष्टिकोण से परिचित हो सकेंगे।
- संपूर्ण सृष्टि प्रकृति का विकास है, इस सांख्यमत के बारे में विस्तार से जानेंगे।
- सृष्टि–निर्माण की प्रक्रिया को समझ सकेंगे; तथा
- दस इंद्रियों, पंच तन्मात्राओं एवं पंच महाभूतों की उत्पत्ति, प्रकृति एवं कार्य को समझ सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

इस इकाई में सांख्य सम्मत सृष्टिक्रम संबंधी का विवेचन किया गया है। सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम प्रकृति से प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम महत् अर्थात् बुद्धि की उत्पत्ति होती है। बुद्धि से अहंकार और अहंकार से मन सहित दस इन्द्रियों और पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। पुनः पंच तन्मात्राओं से पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। मूलतः यही सांख्य दर्शन की सृष्टि–प्रक्रिया है। चराचर जगत् इसीके अन्तर्गत समाहित है। पुरुष इसी के भोग में संलिप्त रहता है। इस इकाई में अत्यन्त विस्तार के साथ सृष्टि–प्रक्रिया का विवेचन किया गया है।

21.2 सृष्टिक्रम

प्रथमतः सृष्टि–प्रक्रिया का विवेचनः–

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पंचभ्यः पंचभूतानि।।22।।

कारिकार्थ : प्रकृति से महतत्त्व की उत्पत्ति होती है (प्रकृतेर्महान्)। उससे अहंकार की उत्पत्ति होती है (ततोऽअहंकारः)। उस अहंकार से सोलह तत्त्वों का समूह उत्पन्न होता है (तस्माद्गणश्च षोडशकः)। उन सोलह में से अन्तिम पांच से पांच महाभूतों की उत्पत्ति होती है (तस्मादपि षोडशकात् पंचभ्यः पंचभूतानि)।।22।।

व्याख्या : सांख्य दर्शन की दृष्टि में सृष्टि की प्रक्रिया प्रकृति से शुरु होती है। सबसे पहले प्रकृति से महत्व की उत्पत्ति होती है, प्रकृतेर्महान्। यहां महान् से तात्पर्य बुद्धि है। महत्व बुद्धि को कहते हैं अर्थात् सृष्टि की प्रक्रिया में सर्वप्रथम बुद्धि उत्पन्न होती है। सांख्यशास्त्र में बुद्धि के पर्याय के रूप में महान्, मति, प्रत्यय और उपलब्धि पदों का प्रयोग किया गया है, महान्बुद्धिर्मतिः प्रत्यय उपलब्धिरिति बुद्धिपर्यायाः। बुद्धि से अहंकार उत्पन्न होता है, ततो अहंकारः। अहंकार किसी वस्तु पर अपनत्व या अधिकार की अनुभूति है। इस अहंकार से पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ, मन और पांच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण को ज्ञानेन्द्रियाँ कहते हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ को कर्मेन्द्रियाँ कहते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध को सांख्य दर्शन में तन्मात्राएं कहा गया है। इस प्रकार पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ, पांच तन्मात्राएं एवं मन इन 16 पदार्थों की उत्पत्ति अहंकार से होती है। इसीलिए कारिका में कहा गया है – तस्माद्गणश्च षोडशकः। पुनः पंच तन्मात्राओं में से प्रत्येक से पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी को पंच महाभूत कहते हैं। आकाशादि पंच महाभूतों की उत्पत्ति के विषय में माठर एवं गौड़पाद का कहना है कि ये तन्मात्राएं अलग–अलग स्वतंत्र रूप से महाभूतों को जन्म देती हैं। जयमंगला और वाचस्पति मिश्र का मानना है कि पूर्व–पूर्व तन्मात्राओं से युक्त होकर ही अगली तन्मात्रा अपने विशेष महाभूत को उत्पन्न करने में समर्थ होती है। इसका तात्पर्य है कि शब्द तन्मात्रा से आकाश महाभूत की उत्पत्ति होती है। शब्द एवं स्पर्श तन्मात्राओं से वायु महाभूत का जन्म होता है। शब्द, स्पर्श एवं रूप तन्मात्राओं से तेज महाभूत की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप और रस तन्मात्राओं से जल महाभूत की एवं शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तन्मात्राओं से पृथ्वी महाभूत का जन्म होता है इसीलिए कहा गया है– तस्मादपि षोडशकात् पंचभ्यः पंचमहाभूतानि। अग्रिम कारिकाओं में पंच महाभूतों को ही स्थूल कहा गया है। ये स्थूल इसलिए हैं क्योंकि इन्द्रियों से इनका प्रत्यक्ष किया जाता है।

बुद्धि निरूपण –महान् से तात्पर्य बुद्धि से है, बुद्धि का लक्षण इस प्रकार है–

अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्।। 23।।

कारिकार्थ : बुद्धि अध्यवसाय है। धर्म, ज्ञान, विराग और ऐश्वर्य उसके सात्त्विक गुण हैं। उसके समान ही विपरीत धर्म वाला तामसी गुण होता है।

व्याख्या : इस कारिका में बुद्धि का लक्षण किया गया है। अध्यवसाय को बुद्धि कहते हैं। पुनः प्रश्न उठता है कि बुद्धि का अध्यवसाय क्या है? वस्तुतः अध्यवसाय एक क्रिया है। इस क्रिया के माध्यम से ही प्राणी कोई निश्चयात्मक व्यापार कर पाता है। यह लोक व्यवहार से सिद्ध है कि प्राणी सदा उपादेय वस्तु को पाना चाहता है और अनुपादेय अर्थात् निरर्थक वस्तु का त्याग करना चाहता है। वह सदा हितकारी क्रिया करता है और अहितकारी क्रिया का त्याग करता है। यह बुद्धि का ही परिणाम है। बुद्धि की अध्यवसायिका प्रवृत्ति के कारण ही ऐसा होता है। प्राणी किसी भी क्रिया के लिए तत्पर होने से पहले चार सम्भावित क्रिया करता है – आलोचन, मनन, अभिमान तथा अवधारण। आलोचन इन्द्रियों का व्यापार है। मनन मन का व्यापार है। अहंकार के कारण ही अभिमान होता है। इसके बाद प्राणी बुद्धि से क्रिया या कार्य सम्पादन का निश्चय करता है। वह सोचता है – मुझे यह कार्य करना चाहिए। मैं इस कार्य को करने में समर्थ हूँ। इस प्रकार की निश्चयात्मक चित्त वृत्ति को ही अध्यवसाय कहते हैं

और यही बुद्धि का कार्य या व्यापार है। कई बार ये चारों क्रियायें इतने सूक्ष्म अन्तराल में होती हैं कि इनके मध्य का क्रम पता नहीं चलता है और केवल प्राणी की क्रियाशीलता दृष्टिगत होती है। परन्तु यह ध्यातव्य है कि किसी भी क्रिया के सम्पादन के पूर्व आलोचन आदि क्रियायें अवश्य होती हैं। सांख्य दर्शन के अनुसार अनुसार बुद्धि अचेतन है परन्तु चेतन पुरुष की छाया पड़ने के कारण इसमें भी चेतना का आरोप हो जाता है और उसी चेतन बुद्धि में अध्यवसाय रूप क्रिया सम्भव है। इसीलिए कारिका में कहा गया है – अध्यवसायो बुद्धिः।

बुद्धि के आठ रूप हैं – धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान, विराग, अनुराग, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य। इनमें धर्म, ज्ञान, विराग और ऐश्वर्य बुद्धि के सात्विक रूप हैं जबकि अधर्म, अज्ञान, अनुराग और अनैश्वर्य इसके तामस रूप हैं। इस प्रकार मुख्यरूप से बुद्धि के दो रूप है – सात्विक और तामस। ये दोनों रूप एक–दूसरे के विपरीत हैं। आठ रूप इस प्रकार हैं –

1. **धर्म** : संस्कृत शास्त्रों में धर्म की परिभाषा दी गई है – यतोऽभ्ययुदयनिःश्रेयसिद्धिः स धर्मः। अर्थात् अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि के हेतु को धर्म कहते हैं। जीवन में भौतिक उन्नति को अभ्युदय कहते हैं। निःश्रेयस् से अभिप्राय है – मोक्ष। धर्म मानव जीवन का भैतिक उन्नति एवं मोक्ष की प्रप्ति दोनों का साधन है। यज्ञ, दानादि श्रेष्ठ कर्मों के सम्पादन से मनुष्य अपने जीवन को सफल बनाता है। धर्म का आचरण करते हुए अपने कर्मों के सम्पादन से ही मनुष्य का जीवन सफल होता है। इसी प्रकार यम, नियम, आसन आदि अष्टांग योग के सम्पादन से मोक्ष की प्रप्ति सम्भव है। इनका आचरण ही धर्माचरण है।

2. **अधर्म** : धर्म के विपरीत आचरण को अधर्म कहा जाता है।

3. **ज्ञान** : ज्ञान एक सामान्य सी अवधारणा है परन्तु सांख्यदर्शन में इसकी एकदम अलग परिभाषा है। वहाँ मूल तत्त्व प्रकृति और पुरुष में अन्तर को जानना ही ज्ञान है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है और पुरुष चेतन है। जबतक इन दोनों के अन्तर को नहीं जाना जा सकता है तब तक सांख्य प्रतिपादित मोक्ष की प्राप्ति असम्भव है। तत्त्वकौमुदी में कहा गया है – गुणपुरुषान्यताख्यातिर्ज्ञानम्। इसप्रकार सांख्य प्रतिपादित तत्त्वों की भेदात्मिका विवेकबुद्धि को ज्ञान कहते हैं। सांख्यदर्शन का मानना है कि सांख्याचार्यों के द्वारा प्रतिपादित 25 तत्त्वों के सम्यक् ज्ञान से ही मोक्ष की प्रप्ति सम्भव है। वहाँ मोक्ष को अपवर्ग कहा गया है।

4. **अज्ञान** : पुरुष और प्रकृति के अविवेकबुद्धि को अज्ञान कहते हैं।

5. **विराग** : किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थान के प्रति आसक्ति का अभाव ही विराग है। सांख्याचार्यों ने विराग के दो प्रकार माने हैं– बाह्य और आभ्यन्तर। लौकिक विषयों के प्रति आसक्ति का अभाव बाह्य विराग है। लौकिक वस्तु विनष्ट होने वाली होती है। अतः उनके प्रति अनासक्तिभाव रखना चाहिए। आभ्यन्तर वैराग्य से तात्पर्य है – विषयों को स्वप्न और इन्द्रजाल के समान समझना। शास्त्रों में विराग की चार अवस्था मानी गई है – यतमान, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय तथा वशीकार।

6. **राग** : सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति का होना ही राग है। विराग के विपरीत आचरण करना ही राग है।

7. **ऐश्वर्य** : सांख्यदर्शन में अणिमा आदि आठ सिद्धियों की सत्ता मानी गई है। अष्ट सिद्धियों का उदय होना ही ऐश्वर्य है। इन सिद्धियों के उदित हो जाने पर मनुष्य में अलौकिक शक्ति का आविर्भाव होता है जिसके परिणामस्वरूप असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं। सामान्य जनों के लिए असम्भव और अगम्य कार्य का सम्पादन सरल हो जाता है, यथा – अणिमा से पत्थर में प्रवेश का सामर्थ्य आ जाता है, प्राप्ति नामक ऐश्वर्य से अंगुली से चन्द्रमा को छू लेना सम्भव हो जाता है।

8. **अनैश्वर्य** : अणिमा आदि सिद्धियों का अभाव ही अनैश्वर्य है। बुद्धि के इन्हीं आठ गुणों के लिए कहा गया ह"– धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्। सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्। अहंकार अगला क्रम है।

अहंकार

अभिमानोऽहंकारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः।
एकादशकश्च गणस्तन्मात्रपंचकष्चैव।।24।।

कारिकार्थ : अभिमान अहंकार है। उस अहंकार से दो प्रकार की सृष्टि होती है –1 ग्यारह इन्द्रियों का समूह तथा 2 पंचतन्मात्राएं।

व्याख्या : अहंकार की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि अभिमान को अहंकार कहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि अभिमान क्या है ? किसी वस्तु, स्थान, व्यक्ति इत्यादि के प्रति अपनत्व या अधिकार का भाव होना अहंकार है। जब हम कहते हैं कि यह वस्तु मेरी है, यह मेरा कार्य है, मैं इसका अधिकारी हूं, यह मेरे लिए है तब हमारे अभिमान की अभिव्यक्ति होती है। इसीको अहंकार कहते है। इसीलिए कारिका में कहा गया है – अभिमानोऽहंकारः।

अहंकार से दो प्रकार की सृष्टि होती है – 1. मन एवं दस इन्द्रियाँ एवं 2. पंच तन्मात्राएं। इन्द्रियाँ दो प्रकार की हाती है – ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ। इनमें ज्ञानेन्द्रियों की संख्या पांच है। कान, आंख, नाक, जिह्वा और त्वचा ये पांच ज्ञानेन्द्रियाँ है। समस्त प्राणी इनसे ही संसार की समस्त वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसीलिए इनको ज्ञानेन्द्रिय कहा गया है। इसी प्रकार कर्म के साधक शरीरांग कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनकी संख्या भी पांच है–मुख, हाथ, पैर, पायु और उपस्थ। पायु मलद्वार को कहते हैं। शरीर का अवशिष्ट पदार्थ इसी द्वार से शरीर से बाहर निकलता है। उपस्थ जननांग को कहते हैं। इस इन्द्रिय का उपयोग प्राणी संतानोत्पत्ति एवं आनन्दानुभूति के लिए करता है। मन को भी इन्द्रिय माना जाता है। इस प्रकार मन, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ की उत्पत्ति अहंकार से होती है।

अहंकार से तन्मात्राओं की भी उत्पत्ति होती है। सांख्यदर्शन में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध को तन्मात्रा कहा गया है। इनकी संख्या पांच है इसीलिए इन्हें पंचतन्मात्रा कहा जाता है। वस्तुतः पंचतन्मात्राएं ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा इन्हीं पंचतन्मात्राओं का ज्ञान किया जाता है।

इस प्रकार अहंकार से दो प्रकार की सृष्टि होती है – ग्यारह इन्द्रियाँ और पांच तन्मात्राएं। इन दोनों की कुल संख्या सोलह हो जाती है। इस प्रकार अहंकार से सोलह पदार्थों की उत्पत्ति है। इसीलिए कारिका में कहा गया है – एकादशकश्च गणस्तन्मात्रपंचकश्चैव।

सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहांकारात्।
भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम्।। 25।।

कारिकार्थ : अहंकार के वैकृत नामक सात्विक अंश से एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। भूतादि संज्ञक पंचतन्मात्राओं की उत्पत्ति अहंकार के तामस अंश से होती है। अहंकार के राजस अंश से दोनों की उत्पत्ति होती है अर्थात् एकादश इन्द्रिय और पंचतन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है (तामसस्तैजसादुभयम्)।

व्याख्या : पूर्व की कारिकाओं में बताया जा चुका है कि प्रकृति त्रिगुणात्मिका होती है। इसमें सत्त्व, रजस एवं तमस तीनों गुण स्वभावतः विद्यमान रहते हैं। ये तीनों गुण प्रकृति से महत् अर्थात् बुद्धि में आते हैं और महत् से अहंकार में। अहंकार में विद्यमान सत्त्व गुण से कारिका चौबीस में बताई गई ग्यारह इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। यहां ग्यारह इन्द्रियों को उत्पन्न करने वाले सात्त्विक गुण को वैकृत कहा गया है।

जब अहंकार में विद्यमान सात्त्विक गुण रजस एवं तमस को दबाकर स्वयं उद्रिक्त या प्रबल हो जाता है तब उसको वैकृत कहते हैं। सात्त्विक गुण के इसी वैकृत अंश से ग्यारह इन्द्रियों का जन्म होता है –सात्त्विक एकादशकः प्रर्वतते वैकृतात्।

अहंकार से उत्पन्न शब्दादि पंच तन्मात्राओं से पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। वस्तुतः पंच महाभूतों की उत्पत्ति अहंकार के तमो गुण का परिणाम है। जब अहंकार का तमोगुण सत्त्व और रजोगुण को दबाकर स्वयं प्रबल हो जाता है तब उस प्रबल तमोगुण से आकाशादि पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। तमोगुण जड़ होता है, इसीलिए ये पंच महाभूत भी जड़ होते हैं। अतः कारिका में महाभूतों की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है–भूतादेस्तन्मात्रः स तामसः।

इस कारिका में रजो गुण के विषय में कहा गया है कि इससे दोनों अर्थात् सात्त्विक गुण से उत्पन्न होनेवाले एकादश इन्द्रियाँ तथा तामस गुण से उत्पन्न होनेवाले पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। यहां शंका होती है कि पहले तो एकादश इन्द्रियों को सत्त्व से उत्पन्न कहा गया है, इसी प्रकार पंच महाभूतों को तमस से उत्पन्न कहा गया है फिर रजस गुण से दोनों की उत्पत्ति कहने का क्या अभिप्राय है ? वस्तुतः रजो गुण के सहयोग से ही सत्त्व और रजो अपनी सृष्टि करने में समर्थ हो पाते हैं। सत्त्व एवं रजो निष्क्रिय गुण हैं। ये स्वयं किसी प्रकार की सृष्टि नहीं कर सकते हैं। रजो गुण गतिशील होता है। स्वयं गतिशील होने के कारण यह सत्त्व एवं तमस को गति प्रदान करता है जिससे ये दोनों गुण अपनी–अपनी सृष्टि करने में समर्थ होते हैं। इसीलिए रजो गुण को एकादश इन्द्रियों एवं पंच महाभूतों को उत्पन्न करने वाला कहा गया है – तैजसादुभयम्।

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुःश्रोत्रघ्राणंरसनत्वगाख्यानि।
वाक्पाणिपादपायूपस्थान् कर्मेन्द्रियाण्याहुः।।26।।

कारिकार्थ : आंख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा ये पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। वाक्, हाथ, पैर, पायु और उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय कहलाती हैं।

व्याख्या : इस कारिका में ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों की नामतः परिगणना की गई है। आंख, कान आदि पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मुख, हाथ आदि पांच कर्मेन्द्रियाँ हैं। कारिका में बुद्धि शब्द का प्रयोग ज्ञान के लिए किया गया है। ज्ञानेन्द्रियाँ बुद्धि या ज्ञान की साधिका होती है। तत्त्वकौमुदी में ज्ञानेन्द्रियों की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि

यह सात्त्विक अहंकार का कार्य है और रूप, रस, गन्ध आदि विषयों के प्रत्यक्षीकरण में करण हैं–सात्त्विकाहंकारकार्यत्वे सति रूपादिविषयलोचनकरणत्वं ज्ञानेन्द्रियत्वम्। इसका तात्पर्य है कि रूपादि विषयों का प्रत्यक्षीकरण ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ही सम्भव है। इसके अभाव में प्राणी संसार की किसी भी वस्तु का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है। नेत्र रूपवान वस्तु की उपलब्धि का कारण होता है। श्रोत्र शब्द की उपलब्धि का कारण होता है। नाक से गन्ध का ज्ञान होता है। जिह्वा मधुर, लवण आदि रसों की उपलब्धि का हेतु है। त्वचा रूप इन्द्रिय से शीत–उष्णता आदि स्पर्श का ज्ञान होता है। यही ज्ञानेन्द्रियों का काम है।

इसी प्रकार पांच कर्मेन्द्रियाँ हैं–वाक्, हाथ, पैर, पायु और उपस्थ। वाक् कर्मेन्द्रिय से बोलने की क्रिया सम्पन्न होती है। हाथ से किसी वस्तु के आदान अर्थात् ग्रहण और प्रदान अर्थात् देने की क्रिया सम्पन्न होती है। पैर से गमनागमन सम्भव होता है। पायु से मलमूत्र विसर्जन की क्रिया होती है। उपस्थ जननेन्द्रिय का नाम है। इससे संतानोत्पत्ति की क्रिया सम्भव हो पाती है। यही कर्मेन्द्रियों का कार्य है। आगे मन की चर्चा में उसके विभिन्न प्रकारों का विवरण इस प्रकार है –

मन

उभयात्मकमत्र मनः संकल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात्।
गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च।। 27।।

कारिकार्थ : एकादश इन्द्रियों में मन उभयात्मक है। यह संकल्प करनेवाला होता है। ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों से साधर्म्य के कारण इसको इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रियों की अनेकता बाह्य जगत् के विषयों के समान है एवं सत्वादि गुणों के विविध रूप में परिणत होने के कारण है।

व्याख्या : इस कारिका में मन के विषय में बताया गया है। मन उभयात्मक होता है। इसका तात्पर्य है कि मन ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों के साथ काम करता है। मन के कारण से ही चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ और वाकादि कर्मेन्द्रियाँ अपना अपना कार्य सम्पादित कर पाती हैं। मन ही इनको अपने कार्य सम्पादन के लिए प्रवृत्त करता है। मन के बिना इन्द्रियाँ अपना–अपना कार्य सम्पादित नहीं कर पाती हैं, अतः यह उभयात्मक है – उभयात्मकमत्र मनः।

मन का लक्षण है – संकल्प करना। अर्थात् मन इन्द्रियों के द्वारा गृहीत विषयों के विषय में संकल्प करता है। संकल्प से तात्पर्य है – यह अच्छा है, यह बुरा है, यह ऐसा है, यह ऐसा नहीं है, इत्यादि विविध प्रकार से इन्द्रियगम्य विषयों पर चिन्तन–मनन करना। मन यही काम करता है। इस प्रकार मन इन्द्रियों से प्राप्त विषयों पर विविध प्रकार से चिन्तन– मनन करता है। अतः मन संकल्पात्मक है – संकल्पकं मनः।

एकादश इन्द्रियों में मन को स्वीकार करने में क्या हेतु है? इस विषय में सांख्याचार्यों का मानना है कि ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों से साधर्म्य के कारण ही मन को भी इन्द्रिय माना जाता है। मन और इन्द्रियों में साधर्म्य कैसे है? मन और इन्द्रियों का उपादान कारण एक ही है। अर्थात् मन और इन्द्रियाँ दोनों ही अहंकार के सात्त्विक अंश से उत्पन्न होते हैं। अतः मन को इन्द्रिय मानने में कोई दोष नहीं है – इन्द्रियं साधर्म्यात्।

एक ही अहंकार से एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति कैसे होती है? इस विषय में पूर्व कारिका में बताया जा चुका है कि से दो प्रकार की सृष्टि होती है – एकादश इन्द्रियों की और पंच तन्मात्राओं की। इनमें एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति का उपादान कारण अहंकार का वैकृत सत्त्वांश है और पंच तन्मात्राओं का उपादान कारण अहंकार का तामस अंश है। यद्यपि एकादश इन्द्रियों का उपादान कारण एक है तथापि सहकारी कारण के गुण एवं परिणाम में भेद होने के कारण एक ही उपादान कारण से भिन्न–भिन्न स्वरूप वाली एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। संसार में भी देखा जाता है कि एक ही मूल पदार्थ के साथ भिन्न–भिन्न गुण और परिणाम वाले सहकारी पदार्थ के संयोग से अनेक पदार्थ का निर्माण होता है। अतः कारिका में कहा गया है – गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च।

रूपादिषु पंचानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः।
वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पंचानाम्।।28।।

कारिकार्थ : रूप आदि विषयों के समक्ष आने पर उनका प्रकाशन मात्र कर देना पंच ज्ञानेनिद्रयों का व्यापार है। वचन, आदान, विचरण, त्याग और आनन्द पंच कर्मेन्द्रियों का व्यापार है।

व्याख्या : इस कारिका में ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियो के व्यापार का प्रतिपादन किया गया है। कारिकागत वृत्ति पद का अर्थ है – व्यापार और आलोचन का अर्थ है – प्रकाशन। इस प्रकार अपने समक्ष आये रूपादि विषयों का प्रकाशन करना ज्ञानेन्द्रियों का व्यापार है। जब रूपादि विषय ज्ञानेन्द्रियों के सन्निकर्ष में आते हैं तब सम्बन्धित ज्ञानेन्द्रियाँ रूपादि विषयों के आकार में परिणत हो जाते हैं।

ज्ञानेन्द्रियों का विषय के रूप में परिणत होना ही विषयों का प्रकाशन है। इसी को ज्ञानेन्द्रियों का व्यापार कहते हैं। कारिका में मात्र पद के प्रयोग का अभिप्राय है कि प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय केवल अपने ही विषय का प्रकाशन करती है। अर्थात् नेत्र केवल रूप का प्रकाशन करता है, श्रोत्र केवल शब्द का प्रकाशन करता है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियाँ अपने अपने विषय का प्रकाशन करती हैं – रूपादिषु पंचानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः।

कर्मेन्द्रियों का व्यापार वचन, आदान, विचरण, त्याग और आनन्द है। पांच कर्मेन्द्रियाँ हैं–वाक्, हाथ, पैर, पायु और उपस्थ। वाक् कर्मेन्द्रिय से बोलने की क्रिया सम्पन्न होती है। हाथ से किसी वस्तु के आदान अर्थात् ग्रहण और प्रदान अर्थात् देने की क्रिया सम्पन्न होती है। पैर से गमनागमन सम्भव होता है। पायु से मलमूत्र विसर्जन की क्रिया होती है। यहां पायु पद से लिङ्ग और गुदा दोनों का ग्रहण करना चाहिए। उपस्थ जननेन्द्रिय का नाम है। इसको लिङ्ग भी कहते हैं। लिङ्ग का व्यापार भेद से पायु और उपस्थ दोनों में ग्रहण होता है। उपस्थ का व्यापार रतिक्रिया से आनन्द की प्रप्ति होने के साथ–साथ संतानोत्पत्ति की क्रिया होती है। यही कर्मेन्द्रियों का व्यापार है – वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पंचानाम् ।28।

करण

स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या।
सामान्यकरणवृत्तिः प्रणाद्या वायवः पंच।।29।।

कारिकार्थ : अपने अपने लक्षण के अनुसार तीनों अर्थात् बुद्धि, अहंकार और मन की जो वृत्तियाँ हैं वह उनका असामान्य व्यापार है। इन तीनों का अन्तःकरण के रूप में सम्मिलित होने पर प्राण आदि पांच वायु भी इनके सामान्य व्यापार हैं।

व्याख्या : बुद्धि, अहंकार और मन इन तीनों का व्यापार दो प्रकार का होता है–1 असामान्य और 2 सामान्य। असामान्य व्यापार से तात्पर्य है – इन तीनों का अपना–अपना अलग–अलग व्यापार और सामान्य व्यापार से तात्पर्य है – इन तीनों का सम्मिलित व्यापार। इन तीनों का असामान्य व्यापार इनके लक्षण के अनुरूप है। पूर्ववर्ती कारिकाओं में इन तीनों का लक्षण दिया गया है। बुद्धि का लक्षण है – अध्यवसायो बुद्धिः अर्थात् अध्यवसाय बुद्धि है। अध्यवसाय की व्याख्या पूर्व की कारिका में की जा चुकी है। प्रस्तुत कारिका के अनुसार अध्यवसाय ही बुद्धि का असामान्य व्यापार है। इसी प्रकार अहंकार का लक्षण अभिमान है – अभिमानोऽहंकारः। मन का लक्षण संकल्प है – मनः संकल्पकम्। अहंकार और मन के लक्षणों का विवेचन पूर्व कारिका में हो चुका है। प्रस्तुत कारिका के अनुसार अभिमान अहंकार का असामान्य व्यापार है और संकल्प करना मन का असामान्य व्यापार है। इस प्रकार बुद्धि, अहंकार और मन इन तीनों का अपना–अपना लक्षण ही इनका असामान्य व्यापार है। अतः कारिका में कहा गया है – स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या।

इन तीनों का सामान्य व्यापार भी है। यहां सामान्य व्यापार से तात्पर्य है – सम्मिलित व्यापार। इन तीनों का सम्मिलित व्यापार है – प्राणादि पांच वायु। प्राणादि पांच वायु का संचार प्राणी के सम्पूर्ण शरीर में होता रहता है। ये पांच वायु हैं – प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। बुद्धि, अहंकार और मन ये तीनों एक साथ मिलकर इन पांच वायु का संचार करते हैं, अतः यह इनका सम्मिलित व्यापार है – सामान्यकरणवृत्तिः प्रणाद्या वायवः पंच।

कारिका में प्रयुक्त करण पद के विद्वान दो अर्थ करते हैं। वाचस्पति मिश्र के अनुसार कारिका में करण पद का प्रयोग बुद्धि, अहंकार और मन के लिए किया गया है। इन्हें अन्तःकरण भी कहते हैं। अन्य टीकाकारों के अनुसार करण पद का प्रयोग तीन अन्तःकरण और दस बाह्यकरण अर्थात् तेरह प्रकार के करण के लिए किया गया है।

युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्तिः क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा।
दृष्टे तथाप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः।।30।।

कारिकार्थ : प्रत्यक्ष के विषय में चारों का अर्थात् बुद्धि, अहंकार, मन और बाह्य इन्द्रियों का व्यापार कभी साथ–साथ तथा कभी क्रम से होता है – ऐसा सांख्याचार्यों का मानना है। अदृष्ट अर्थात् अनुमानादि के विषय में बुद्धि, अहंकार और मन की क्रिया के पहले प्रत्यक्ष की क्रिया होती है।

व्याख्या : प्रस्तुत कारिका में बुद्धि आदि करणों के व्यापार में क्रम का निरूपण किया गया है। कारिका में प्रयुक्त दृष्टे पद का अर्थ है–प्रत्यक्ष के विषय में । अर्थात् इन्द्रियगोचर पदार्थों के विषय में अन्तःकरण की प्रवृत्ति कहीं युगपत् होती है तो कहीं अलग–अलग क्रम से। युगपत् प्रवृत्ति से तात्पर्य है कि सभी अन्तःकरण एक साथ क्रियाशील हो जाते हैं। करणों की युगपत् प्रवृत्ति को एक उदाहरण से समझा जा सकता है। अन्धेरी रात में अचानक बिजली के चमकने पर पैर के नीचे सर्प को देखकर व्यक्ति चिल्लाते हुए कूद कर या दौड़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर चला जाता है। यहां एक साथ ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, बुद्धि, अहंकार और मन का

व्यापार होता है। ज्ञानेन्द्रिय से सर्प का ज्ञान हुआ। कर्मेन्द्रिय से कूदने या भागने की क्रिया हुई। मन ने चिन्तन–मनन किया। अहंकार ने अभिमान कर स्वीकार किया कि यह खतरा है। बुद्धि ने निश्चय किया कि भागा जाए। यहां सारी क्रियाएं एक साथ हुई। इसी को सांख्य दर्शन में करण का युगपत् व्यापार कहा गया है – युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्तिः।

इसी प्रकार करणों का क्रमिक व्यापार भी होता है। दूरदर्शन से किसान को पता चला कि कल वर्षा होगी। सर्वप्रथम श्रात्रेन्द्रिय का व्यापार हुआ। फिर किसान ने अहंकार से इसको अवसर समझा। मन के द्वरा चिन्तन–मनन किया कि किस खेत बीज बोया जाए और बुद्धि के द्वारा निश्चय किया कि अमुक खेत में बीज बोना है। इस प्रकार यहां क्रम से करणों का व्यापार हो रहा है। इसीलिए कारिका में कहा गया है – वृत्तिः क्रमशश्च तस्य।

विषय के परोक्ष होने पर ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का व्यापार नहीं होता है। इनका व्यापार सम्भव ही नहीं है। अतः ऐसे अवसर पर मन, अहंकार और बुद्धि का व्यापार होता है। कारिका में अदृष्ट पद का अर्थ है – सांख्य सम्मत अनुमान तथा शब्द प्रमाण। अदृष्ट के विषय में करणों का व्यापार प्रत्यक्ष के समान ही होता है अर्थात् कभी युगपत् तो कभी क्रमपूर्वक – अदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः।

स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते परस्पराकूतहेतुकां वृत्तिम्।
पुरुषार्थ एव हेतुर्न केनचित्कार्यते करणम्।।31।।

कारिकार्थ : एक दूसरे की क्रिया का अनुमान करके ही (ये चारों) अपनी अपनी क्रिया का सम्पादन करते हैं। पुरुष के प्रयोजन की सिद्धि ही इनके व्यापार का हेतु है। इनके अलावा अन्य कोई कारण नहीं है जो इनको कार्य में लगाए।

व्याख्या : बुद्धि, अहंकार और मन को अन्तःकरण कहा गया है और ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय को बाह्यकरण कहा गया है। ये त्रयोदश करण क्रियाशील कैसे होते हैं ? इस विषय में सांख्यदर्शन का सिद्धान्त है कि ये करण एक दूसरे की क्रिया का अनुमान कर क्रियाशील होते हैं।

इस सिद्धान्त को एक दृष्टान्त से समझा जा सकता है। युद्धभूमि में विद्यमान सैनिक एक–दूसरे के अभिप्राय को समझकर क्रियाशील हो जाते हैं। सभी सैनिकों को अलग–अलग निर्देश नहीं दिया जाता है। ठीक उसी प्रकार से त्रयोदश अन्तःकरण एक–दूसरे से संकेत पाकर अपनी–अपनी क्रिया का सम्पादन करते हैं। जब एक करण क्रियाशील होता है, तब उसको क्रियाशील देखकर दूसरे करण भी क्रियाशील हो जाते हैं। दरवाजे पर खटखट की आवाज होने पर श्रोत्रेन्द्रियाँ क्रियाशील होती है। मन चिन्तन–मनन करता है कि कोई आया है। पैर दरवाजा खोलने के लिए चल पड़ता है। इसी प्रकार यहां अन्य करण भी क्रियाशली हो जाते है। अतः कहा गया है – स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते परस्पराकूतहेतुकां वृत्तिम्।

करणों की प्रवृत्ति क्यों होती है? करण स्वयं में जड़ हैं। ये स्वयं प्रवृत्त नहीं हो सकते हैं। इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि पुरुष के भोग और अपवर्ग की सिद्धि ही इनको प्रवृत्त करती है। ये पुरुषार्थ ही अनागत रूप से अवस्थित होकर इन्हें अपनी–अपनी क्रियाओं में प्रवृत्त करती है। इनकी प्रवृत्ति का हेतु पुरुषार्थ के अतिरिक्त कुछ और नहीं हो सकता है। इसप्रकार पुरुषार्थ सिद्धि इनको प्रवृत्त करता

है और ये पुरुषार्थसिद्धि के लिए प्रवृत्त होते हैं – पुरुषार्थ एव हेतुर्न केनचित्कार्यते करणम् ।31 ।

करण–भेद

करणं त्रयोदशविधं तदाहरणधारणप्रकाशकरम् ।
कार्यं च तस्य दशधाऽऽहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च ।।32 ।।

कारिकार्थ : करण तेरह प्रकार के होते हैं जो बाह्य विषयों का आहरण, धारण और प्रकाशन करते हैं। इनके आहरण, धारण और प्रकाशन रूप कार्य दस प्रकार के होते हैं।

व्याख्या : करण की कुल संख्या तेरह है – पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ, बुद्धि, अहंकार और मन। इन त्रयोदश करणों का तीन व्यापार है – आहरण, धारण और प्रकाशन। आहरण का अर्थ है– लाना, प्राप्त करना। कर्मेन्द्रियाँ वस्तुओं को उपलब्ध कराने का कार्य करती है। आहरण कर्मेन्द्रियों का व्यापार है। कर्मेन्द्रियों के द्वारा ही वस्तु उपलब्ध होती है। धारण बुद्धि, अहंकार और मन का व्यापार है। बुद्धि, अहंकार और मन अपनी–अपनी अध्यवसाय, अभिमान और संकल्प से प्रणादि के द्वारा शरीर को धारण करते हैं। प्रकाशन ज्ञानेन्द्रियों का व्यापार है। बाह्य वस्तु के सन्निकर्ष में आने पर ज्ञानेन्द्रियाँ उनका प्रकाशन करती है। आचार्य गौड़पाद के अनुसार आहरण और धारण कर्मेन्द्रियों का व्यापार है। प्रकाशन ज्ञानेन्द्रियों का व्यापार है। वे यहां अन्तःकरण के व्यापार के विषय में कुछ नहीं कहते हैं। माठरवृत्ति में आहरण को ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन का व्यापार कहा गया है। धारण अहंकार का व्यापार है। प्रकाशन बुद्धि का व्यापार है। इसप्रकार करण तीन प्रकार का व्यापार करते हैं– करणं त्रयोदशविधं तदाहरणधारणप्रकाशकरम् ।

करण द्वारा सम्पादित त्रिविध व्यापार दस प्रकार के होते हैं। ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा पांच विषयों का का प्रकाशन किया जाता है। वे पांच विषय हैं – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा इनका प्रकाशन किया जाता है। कर्मेन्द्रियों के द्वारा भी पांच व्यापार सम्पादित किये जाते हैं – वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग और आनन्द। मन ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों के व्यापार में ही सहभागी होता है। अहंकार कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेद्रियों से गृहीत इन्हीं विषयों को धारण करने का व्यापार करता है। बुद्धि इन्हीं विषयों का प्रकाशन करती है। इस प्रकार त्रयोदश करणों के द्वारा दस प्रकार के व्यापार सम्पादित होते हैं –

अन्तःकरणं त्रिविधं दशधा बाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम् ।।
साम्प्रत्कालं बाह्यं त्रिकालमारभ्यन्तरं करणम् ।।33 ।।

कारिकार्थ : अन्तःकरण तीन प्रकार का होता है। दस बाह्य करण हैं जो अन्तःकरण के विषय का प्रकाशन करती हैं। बाह्य करण वर्तमानकालिक होते हैं। अन्तःकरण त्रयकालिक अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालों में प्रवृत्त होने वाला होता है।

व्याख्या : पूर्ववर्ती कारिकाओं में जिन तेरह करणों की चर्चा की गई है, वे दो प्रकार के होते हैं – अन्तःकरण और बाह्यकरण। बुद्धि, अहंकार और मन अन्तःकरण के अन्तर्गत आते हैं जबकि पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और पांच कर्मेन्द्रियाँ को मिलाकर दस बाह्यकरण होते हैं। दस बाह्यकरणेां के द्वारा अन्तःकरण के विषयों का प्रकाशन होता

है। अर्थात् अन्तःकरण विषयी है और बाह्यकरण विषय। ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा अन्तःकरण को बाह्य विषयों की सूचना दी जाती है। कर्मेन्द्रियाँ अन्तःकरण के निर्णय के अनुरूप कार्य करती हैं और बाह्य विषयों को उसके अनुरूप उपलब्ध या अनुपलब्ध कराती है। इस प्रकार बाह्य करण अन्तःकरण का साधक होता है। वह अन्तःकरण के लिए ही क्रियाशील होता है। अतः कारिका में कहा गया है–अन्तःकरणं त्रिविधं दशधा बाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम्। यहां विषयाख्यम् का अर्थ है–विषयों का प्रकाशन करना।

बाह्यकरणों की प्रवृत्ति वर्तमान काल में होती है। जब ज्ञानेन्द्रियों के समक्ष विषय उपस्थित होता है तभी वह क्रियाशील होकर उनका प्रकाशन करती हैं। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियाँ भी समक्ष उपस्थित विषय के प्रति ही क्रियाशील होती हैं। ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों की गति भूत या भविष्यत् काल में नहीं होती है। इसके विपरीत अन्तःकरण की गति त्रिकालव्यापी होती है। अन्तःकरण वर्तमान, भूत और भविष्यत् काल तीनों में क्रियाशील होता है। प्रातः घर के चारों तरफ जल देखकर रात्रि में वर्षा हुई थी, यह भूतकालिक ज्ञान अन्तःकरण के द्वार ही होता है। आकाश में बादल को देखकर बारिश होगी यह भविष्यत् कालिक ज्ञान भी अन्तःकरण से होता है। इसी प्रकार भविष्यत् कालिक क्रिया भी अन्तःकरण की होती है। इसीलिए कारिका में कहा गया है – साम्प्रत्कालं बाह्यं त्रिकालमारभ्यन्तरं करणम् ।33।

बुद्धीन्द्रियाणि तेषां पंच विशेषाविशेषविषयाणि।
वाग्भवति शब्दविषया शेषाणि तु पंचविषयाणि।। 34।।

कारिकार्थ : उनमें से पांच को बुद्धीन्द्रिय अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय कही जाती हैं। उनका विषय विशेष और अविशेष दोनों होते हैं। पंच कर्मेन्द्रियों मे से वाक् इन्द्रिय का विषय शब्दमात्र है और शेष चार कर्मेन्द्रियों के शब्दादि पांचों विषय हैं।

व्याख्या : पांच ज्ञानेन्द्रियों का विषय विशेष और अविशेष होता है। यहां विशेष से तात्पर्य है – स्थूल पदार्थ। इसके अन्तर्गत पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश का ग्रहण होता है। अविशेष का अभिप्राय शब्दादि पंच तन्मात्राएं है जो सूक्ष्म होती हैं। यद्यपि ज्ञानेन्द्रियों का विषय विशेष और अविशेष दोनों है, इसमें दोनों के ग्रहण का सामर्थ्य है परन्तु सामान्य मनुष्य केवल विशेष को ही जान पाता है, अविशेष को सिद्ध योगी ही जान पाते हैं। अविशेष की सूक्ष्मता और सामान्य मनुष्य के मन की मलिनता अविशेष की प्रतीति में बाधक बन जाते हैं।

पांच कर्मेन्द्रियों में से वाक् का विषय शब्द है। यहां शब्द से शब्द–तन्मात्रा के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है। यहां इससे ध्वन्यात्मक शब्द गृहीत करना चाहिए। वाक् का एकमात्र विषय शब्द है। वाक् के अतिरिक्त अन्य चार कर्मेन्द्रियों का विषय शब्द सहित स्पर्श, रूप, रस और गन्ध है। इसका तात्पर्य है कि स्पर्श, रूप, रस और गन्ध वाक् को छोड़ कर अन्य चार कर्मेन्द्रियों के विषय एक साथ बन सकते हैं। उदाहरणस्वरूप हाथ से हम जिस घड़े को पकड़ते है, उसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध सदा विद्यमान रहता है। इसीलिए कारिका में कहा गया है – वाग्भवति शब्दविषया शेषाणि तु पंचविषयाणि ।34।

सान्तःकरणा बुद्धिः सर्वं विषयमवगाहते यस्मात्।
तस्मात् त्रिविधं करणं द्वारि द्वाराणि शेषाणि ।।35।।

कारिकार्थ : क्योंकि अन्तःकरणों अर्थात् मन एवं अहंकार के साथ मिलकर ही बुद्धि सभी प्रकार के विषयों का अवगाहन करती है इसलिए ये तीनों करण द्वारि अर्थात् कक्ष के समान प्रधान हैं और शेष दसों इन्द्रियाँ द्वार के समान गौण हैं।।35।।

व्याख्या : अन्तःकरण अर्थात् बुद्धि, अहंकार एवं मन की गति समस्त विषयों तक होती है। वस्तुतः ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ समस्त बाह्य विषयों को अन्तःकरण तक सम्प्रेषित करने का कार्य करती हैं। अतः सांख्यदर्शन स्वीकार करता है कि अन्तःकरण में समस्त विषयों के अवगाहन का सामर्थ्य है। मुख्य रूप से बुद्धि इन्द्रियों से प्राप्त सूचनाओं का उपयोग पुरुष के भोग एवं अपवर्ग की सिद्धि के लिए करती है। अतः कारिका में कहा गया है–सान्तःकरणा बुद्धिः सर्वं विषयमवगाहते यस्मात्।

इस कारिका में त्रिविध अन्तःकरण को द्वारि और दस बाह्यकरण को द्वार कहा गया है। यहां द्वारि का अर्थ है – कक्ष और द्वार का अर्थ है – प्रवेश द्वार। अर्थात् जिसप्रकार से प्रवेश द्वार के माध्यम से कमरे में भोग के लिए सामग्री का संग्रह किया जाता है। ठीक उसी प्रकार से बाह्यकरणों के द्वारा सांख्य सम्मत पुरुष के भोग के लिए अन्तःकरण में विषयों का संग्रह किया जाता है। उससे यह भी सिद्ध होता है कि बाह्यकरण की अपेक्षा अन्तः करण की प्रधानता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि त्रिविध अन्तःकरण रूप गृह के बाह्यकरण रूप दस द्वार हैं – तस्मात् त्रिविधं करणं द्वारि द्वाराणि शेषाणि।35।

एते प्रदीपकल्पाः परस्परविलक्षणा गुणविशेषाः।
कृत्स्नं पुरुषस्यार्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति।।36।।

कारिकार्थ : ये ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, मन और अहंकार प्रदीप के समान हैं और परस्पर विलक्षण अर्थात् विरोधी गुण विशेष वाले हैं तथापि पुरुष के निखिल विषयों का प्रकाशन कर उन्हें बुद्धि में समर्पित कर देते हैं।

व्याख्या : यहां दस इन्द्रियाँ, मन और अहंकार को परस्पर विलक्षण गुणवाला कहा गया है। गुण से तात्पर्य है – सत्त्व, तमो और रजो गुण। ये तीनों गुण परस्पर विरोधी हैं फिर भी एक साथ रहते हैं। यही इनकी विशेषता है। इन गुणों का परस्पर विरोध इनके अन्तः और बाह्य करण रूप विकारों में भी विद्यमान रहता है। गुणों में विरोध और एक साथ रहना यह विरोधाभास है। सांख्यकारिकाकार ने इसका निराकरण प्रदीप के दृष्टान्त से दिया है। जिस प्रकार बत्ती, तेल और अग्नि परस्पर विरोधी होते हुए भी एक साथ रहकर अंधकार का अपनय करते है, उसी प्रकार परस्पर विरोधी अन्तःकरण और बाह्यकरण साथ रहकर पुरुष के भोग एवं अपवर्ग के लिए विषयों को बुद्धि में प्रकाशित करते हैं। बुद्धि में ही समस्त विषयों का प्रकाशन होता है। इससे त्रयोदश अन्तःकरणों में बुद्धि की प्रधानता सिद्ध होती है।

सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात्पुरुषस्य साधयति बुद्धिः।
सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम्।।37।।

कारिकार्थ : पुरुष के सभी प्रकार के भोगों को बुद्धि ही उपस्थित करती है। इसलिए वही प्रधान अर्थात् प्रकृति एवं पुरुष के सूक्ष्म अन्तर को प्रकट कर देती है।

व्याख्या : त्रयोदश अन्तःकरणों में बुद्धि ही पुरुष के समस्त भोगों की सामग्री उपलब्ध कराती है। यह पहले बताया जा चुका है कि इन्द्रियों के द्वारा समस्त विषयों का प्रकाशन बुद्धि में ही किया जाता है। वस्तुतः सुख–दुःख की अनुभूति बुद्धि में होती है,

यह अनुभूति ही भोग है। बुद्धि से पुरुष को विषयों का भोग स्वतः हो जाता है। इसीलिए कारिका में कहा गया है कि बुद्धि पुरुष के सभी उपभोग सामग्री को सिद्ध करती है – सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात्पुरुषस्य साधयति बुद्धिः।

पुरुष के लिए उपभोग सामग्री उपलब्ध कराने के कारण ही बुद्धि प्रधान है। वह ही समस्त आभ्यन्तर और बाह्य करणों में श्रेष्ठ है। बुद्धि की एक और विशेषता है। वह पुरुष और प्रकृति के भेद को भी प्रकट कर देती है। बुद्धि ही भोगोपलब्धि के बाद पुरुष में प्रकृति और पुरुष के सर्वथा भिन्न होने का विवेक करा देती है। अर्थात् बुद्धि के सौजन्य से पुरुष को विवेक हो जाता है कि मैं भिन्न हूँ। यह सारा भोग सामग्री और जगत् प्रकृति का विकार मात्र है। माठरवृत्ति के अनुसार पुरुष को भोगोपरान्त विवेक होता है। इसप्रकार बुद्धि प्रकृति एवं पुरुष में सूक्ष्म भेद को प्रकट करती है – सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम्।

तन्मात्राण्यविशेषाः तेभ्यो भूतानि पंच पंचभ्यः।
एते स्मृता विशेषाः शान्ता घोराश्च मूढाश्च ।।38।।

कारिकार्थ : पंचतन्मात्राएं अविशेष हैं इन्हीं पांच तन्मात्राओं से पांच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। ये विशेष हैं क्योंकि शान्त, घोर और मूढ हैं।

व्याख्या : कारिका 34 में विशेष और अविशेष को ज्ञानेन्द्रियों का विषय बताया गया है। सांख्यदर्शन में स्थूल पदार्थ अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को विशेष बताया गया है। शब्दादि पंच तन्मात्राएं अविशेष हैं। सूक्ष्म होने के कारण सामान्य मनुष्य ज्ञानेन्द्रियों से अविशेष का ज्ञान नहीं कर पाता है। इसका ज्ञान तो योगी ही कर पाते हैं। इन्हीं पंच तन्मात्राओं से क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल और गन्ध पंचमहाभूतों की उत्पत्ति होती हैं अर्थात् शब्द तन्मात्रा से आकाश, शब्द एवं स्पर्श से वायु, शब्द, स्पर्श एवं रूप से अग्नि, शब्द, स्पर्श, रूप एवं रस से जल और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से पृथ्वी तन्मात्रा की उत्पत्ति होती है – तन्मात्राण्यविशेषाः तेभ्यो भूतानि पंच पंचभ्यः।

पंच महाभूत विशेष होते हैं। ये महाभूत अनुभवयोग्य, सुख, दुख और मोह देने वाले होते हैं, इसलिए ये विशेष हैं। ये शान्त, घोर और मूढ भी होते हैं। सत्त्व प्रधान होने पर ये सुखात्मक अर्थात् शान्त होते हैं। रजोगुण के प्रधान होने पर ये घोर और तमोगुण के प्रधान होने पर मूढ होते हैं–एते स्मृता विशेषाः शान्ता घोराश्च मूढाश्च घोर से तात्पर्य है–दुःख देनेवाला एवं अस्थिर और मूढ का अर्थ है – भारी एवं विषण्ण।

लिङ्ग शरीर

सूक्ष्मा मातापितृजाः सह प्रभूतैस्त्रिधा विशेषाः स्युः।
सूक्ष्मास्तेषां नियता मातापितृजा निवर्तन्ते।।39।।

कारिकार्थ : सूक्ष्म और माता–पिता से उत्पन्न शरीर के साथ महाभूतों को मिलाकर तीन प्रकार के विशेष होते हैं। इनमें सूक्ष्म नियत होते हैं और माता–पिता से उत्पन्न शरीर ही उत्पन्न होते हैं और विनष्ट होते हैं।

व्याख्या : सांख्यदर्शन के अनुसार सृष्टि के क्रम में तीन विशेष वस्तुओं की सृष्टि होती है–सूक्ष्म शरीर, माता–पिता से उत्पन्न स्थूल शरीर और पंच महाभूत। इनमें सूक्ष्म शरीर प्रकृति से उत्पन्न 18 तत्त्वों के मेल से बनता है। ये 18 तत्त्व हैं – महत्तत्त्व, अहंकार, मन, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ और पांच तन्मात्राएं। यह सूक्ष्म शरीर

प्रत्येक व्यक्ति के शरीर के अन्दर ही विद्यमान रहता है। यह सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर प्रलय तक विद्यमान रहता है। यह नित्य होता है। इसी को सांख्यदर्शन में लिङ्गशरीर अथवा सूक्ष्मशरीर कहा गया है। माता–पिता के रज और वीर्य से उत्पन्न शरीर को स्थूल शरीर कहते हैं। यह शरीर उत्पन्न होता है और विनष्ट होता है – मातापितृजा निवर्तन्ते।

महाभूत के लिए कारिका में प्रभूत पद का प्रयोग किया गया है। महाभूतों का विवेचन पूर्व कारिका में किया जा चुका है। यहां महाभूतों को भी विशेष कहा गया है क्योंकि ये सुख, दुःख और मोह देने वाले होते हैं।

पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम्।
संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम्।।40।।

कारिकार्थ : सूक्ष्म शरीर पहले से ही उत्पन्न होते हैं। यह असक्त अर्थात् कहीं रुकने वाला नहीं होता है। यह नियत होता है। यह महदादि से लेकर सूक्ष्मभूत पंच तन्मात्राओं पर्यन्त होता है। यह निरुपभोग अर्थात् विषयों का उपभोग नहीं करता है। यह धर्मादि आठ भावों की वासना से युक्त होता ह। यह तीनों लोकों में विचरण करता है।

व्याख्या : प्रस्तुत कारिका में कारिका 39 में वर्णित लिङ्ग शरीर की विशेषताओं का प्रतिपादन किया गया है। इसकी निम्नलिखित विशेषताएं हैं –

पूर्वोत्पन्नम् : यह लिङ्गशरीर अनादि काल से उत्पन्न है। सांख्यदर्शन के अनुसार महाप्रलय के अनन्तर जब प्रथम बार सृष्टि होती है, तब लिङ्शरीर उत्पन्न होता है। तब से महाप्रलय तक यह विद्यमान रहता है।

असक्तम् : इसकी सर्वत्र गति है। यह सभी स्थलों पर जा सकता है। यह आकाश में उड़ सकता है। पत्थर में प्रवेश कर सकता है। यह लोक–लोकान्तर जा सकता है। इसकी गति कही रुकती नहीं है। अतः यह असक्त है।

नियतम् : यह आदि सर्ग अर्थात् प्रथम सृष्टि से लेकर अन्तिम सृष्टि तक विद्यमान रहता है। इसलिए यह नियत है।

महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम् : यह सूक्ष्मशरीर महत् अर्थात् बुद्धि, अहंकार, मन, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ पंच कर्मेन्द्रियाँ और सूक्ष्मभूत पंच महाभूतों का समुदाय है।

निरुपभोगम् : यह साक्षात् विषयों का भोग नहीं करता है।

भावैरधिवासितम् : यहां भाव पद से तात्पर्य है – धर्म–अधर्म, ज्ञान–अज्ञान, विराग–राग और ऐश्वर्य और अनैश्वर्य। ये वस्तुतः बुद्धि के धर्म हैं। लिङ्गशरीर बुद्धि आदि का समुदाय है, अतः यह भी धर्मादि भावों की वासना से युक्त होता है।

संसरति : लिङ्शरीर लोक–परलोक में संचरण करने में समर्थ होता है। ये सभी लिङ्गशरीर की विशेषताएं हैं।

चित्रं यथाश्रयमृते स्थाण्वादिभ्यो विना यथाच्छाया।
तद्वद्विनाऽविशेषैर्न तिष्ठति निराश्रयं लिङ्गम्।।41।।

कारिकार्थ : जैसे कोई चित्र बिना आधार के नहीं बन सकता है। जैसे वृक्षादि के बिना छाया नहीं हो सकती है, उसी प्रकार विशेष अर्थात् लिङ्गशरीर के बिना आश्रयरहित बुद्धि आदि करण नहीं रह सकते हैं।

व्याख्या : पूर्व की कारिकाओं में जिस लिङ्गशरीर (सूक्ष्मशरीर) का वर्णन किया गया है, उसकी गणना सांख्य के 25 तत्त्वों में नहीं है। उसको बुद्धि आदि का समुदाय कहा गया है। ऐसे में लिङ्ग शरीर को मानने की क्या आवश्यकता है। क्यों न मान ले कि बुद्धि ही सृष्टि से लेकर प्रलय पर्यन्त विधमान रहती है। प्रकृत कारिका में इसी प्रश्न का उत्तर दिया गया है। जिस प्रकार से फलक के बिना चित्र का निर्माण नहीं हो सकता है और वृक्ष के बिना छाया की कल्पना नहीं की जी सकती है ठीक उसी प्रकार से बुद्धि आदि की सत्ता की सिद्धि के लिए लिङ्गशरीर को मानना आवश्यक है। बुद्धि आदि का आश्रय यह लिङ्गशरीर ही है। यदि यह कहा जाए कि स्थूलशरीर को आश्रय मान लेना चाहिए तो स्थूल शरीर नश्वर है। उसकी मृत्यु के बाद बुद्धि आदि का आश्रय क्या होगा। बुद्धि आदि का आश्रय वही हो सकता है जो सृष्टि से प्रलय पर्यन्त विद्यमान रहे। अतः सांख्यदर्शन इसके लिए लिङ्गशरीर को स्वीकार करता है। कारिका में प्रयुक्त लिङ्ग पद का अर्थ बुद्धि आदि त्रयोदश करण है, लिङ्गशरीर नहीं। विशेष पद लिङ्गशरीर के लिए प्रयुक्त हुआ है।

पुरुषार्थहेतुकमिदं निमित्तनैमित्तकप्रसंगेन।
प्रकृतेर्विभुत्वयोगान्नटवद् व्यवतिष्ठते लिङ्गम्।।42।।

कारिकार्थ : यह पुरुष के प्रयोजन के लिए ही होता है। निमित्त और नैमित्तिक के प्रसंग सेयह प्रकृति के जगत् कर्तृत्व की शक्ति से अभिनेता के समान रहता है।

व्याख्या : पुरुष के भोग एवं अपवर्ग की सिद्धि के लिए ही लिङ्गपुरुष की प्रवृत्ति होती है। इसीके लिए वह स्थूल शरीर धारण करता है। वह नाटक के नट के समान अनेक रूप धारण करता है। वह मनुष्य, शूकर, कूकर, कीट, पतंग आादि विविध रूपों को धारण करता है। वह विविध योनियों में भ्रमण करता है और तत्तद् शरीरों को अपना मानता है।

सूक्ष्म शरीर बुद्धि के धर्मादि आठ भावों के फलाफल रूप विविध शरीर और योनियों को प्राप्त करता है। कारिका में इसीलिए कहा गया है – निमित्तनैमित्तकप्रसंगेन। अर्थात् जैसा उसका धर्मादि होता है वैसा शरीर वह धारण करता है। स्थूलशरीर से निकलने के बाद सूक्ष्मशरीर की विलक्षण क्रियाएं होती हैं। वह उर्ध्व और अधोगमन करता है और विविध लोकों का विचरण करता है। ये समस्त शक्तियाँ उसको प्रकृति से मिलती हैं – प्रकृतेर्विभुत्वयोगात्।

21.3 सारांश

सांख्यदर्शन का सृष्टिक्रम का निरुपण अत्यन्त वैज्ञानिक है। यह प्रकृति से सम्पूर्ण सृष्टि के सृजन की सिद्धान्त को स्थापित करता है और अत्यन्त ताक्रिक रीति से अपने सिद्धान्त की स्थापना में सफल भी होता है। प्रकृति का गुणत्रय से समन्वित होना ही सांख्य की समस्त अवधारणाओं की सिद्धि का हेतु बनता है। प्रकृति से 23 तत्त्वों की सृष्टि होती है। सर्वप्रथम प्रकृति से महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है। इसीको बुद्धि कहते हैं। इससे अहंकार का जन्म होता है। अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों, मन और पांच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। इनमें से पांच तन्मात्राओं से पंचमहाभूतों की

जन्म होता है। इस प्रकार प्रकृति से 23 तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। इन सबका समुदाय स्थूल शरीर होता है। इसी स्थूल शरीर को को हम धारण करते हैं। यह नश्वर होता है। इस स्थूल शरीर के अन्तर्गत लिङ्गशरीर अर्थात् सूक्ष्मशरीर होता है जो सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर प्रलय पर्यन्त विद्यमान रहता है। यही धर्माधर्मादि के फलस्वरूप विविध योनियों का विधान करता है।

21.4 शब्दावली

महत्तत्त्व : प्रकृति का प्रथम विकार। इसी को सांख्यदर्शन में बुद्धि गया है। अध्यवसाय इसका लक्षण है।

अहंकार : अहंकार बुद्धि का विकार हैं अथात् इसकी उत्पत्ति बुद्धि से होती है। इससे पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय मन और पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। पंच ज्ञानेन्द्रिय नेत्र, श्रोत्र, घ्राण, त्वक और जिह्वा को पंच ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। इन्हीं से सांसारिक विषयों का ज्ञान होता है।

पंचकर्मेन्द्रिय : मुख, हाथ, पैर, पायु और उपस्थ को पांच कर्मेन्द्रिय कहते हैं। इनसे सांसारिक क्रियाएं सम्पन्न होती है।

पंचतन्मात्रा : शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध को पंच तन्मात्रा कहते हैं। ये ही ज्ञानेन्द्रियों के विषय बनते हैं।

पंचमहाभूत : आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी को पंच महाभूत कहते हैं।

मन : मन की गणना इन्द्रियों में होती है। यह चिन्तन–मनन का काम करता है।

त्रयोदश करण : बुद्धि, अहंकार, मन, पंच ज्ञानेन्द्रिय और पंच कर्मेन्द्रिय को सम्मिलित रूप में त्रयोदश करण कहते हैं।

स्थूल शरीर : माता–पिता से उत्पन्न शरीर को स्थूल शरीर कहते हैं। यही शरीर जन्म–मृत्यु के द्वारा विविध योनियों में भ्रमण करता है।

सूक्ष्म शरीर : इसी को लिङ्गशरीर भी कहते हैं । यह शरीर सृष्टि के आदि से लेकर महाप्रलय पर्यन्त विद्यमान रहता है। इसमें विलक्षण सामर्थ्य होता है। यह शिला में प्रवेश कर सकता है, लोक–परलोक गमन कर सकता है।

21.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. सांख्यकारिका– व्रजमोहन चतुर्वेदी
2. सांख्यतत्त्वकौमुदी– हरदत्त शर्मा
3. सांख्यसंग्रह– विन्ध्येश्वरी प्रसाद
4. सांख्य दर्शन का इतिहास– उदयवीर शास्त्री
5. .भारतीय दर्शन– चन्द्रधर शर्मा

21.6 अभ्यास प्रश्न

1. ज्ञानेन्द्रियों का क्या कार्य है?

2. कर्मेन्द्रियों का क्या कार्य है?
3. मन कैसे काम करता है?
4. अहंकार से उत्पन्न होने वाले तत्त्वों का नाम लिखिए।
5. तन्मात्राओं से महाभूतों की उत्पत्ति का क्रम लिखिए।
6. वैकृत सत्त्व क्या है?
7. त्रयोदश करण के तीन कार्य कौन–कौन से हैं?
8. त्रयोदश करणों के युगपत् और क्रमिक व्यापार को समझाइये।
9. सूक्ष्म शरीर की विशेषताएं लिखिए।
10. बुद्धि के आठ रूपों का विवेचन कीजिए।
11. सांख्यदर्शन में लिङ्गशरीर स्वीकार करने का क्या प्रयोजन है?

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY